जिनागम बाह्य हैं तेरह-बीस पंथ

• **श्रमणाचार्य विमर्शसागर**

यह जीव स्वयं अपने ही परिणामों से अपने लिये कभी सुख का तो कभी दु:ख का मार्ग निर्मापित करता रहता है। कोई भव्य जीव ऐसे भी होते हैं, जो इन सांसारिक सुख-दु:ख (पुण्य-पाप) से परे निज आत्महित का मार्ग खोज लेते हैं। हमारा हित और अहित सब कुछ हमारे परिणामों पर ही निर्भर है। अगर हम अहित से बचकर आत्महित के मार्ग को चुनना चाहते हैं, तो हमें अपना आत्महित का मार्ग स्वयं ही निर्मापित करना होगा। आत्महित का मार्ग कहीं बाहर नहीं, हमारे भीतर ही है वह मार्ग हमारी आत्मा में त्रैकालिक विद्यमान है। अनादिकाल से अनंतानंत अरिहंत केवलियों ने वह आत्महितकारी एक ही मार्ग बताया है-

''सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग:''

यह सूत्र अनादिअनिधन है, पूर्व में अनादिकाल से तीर्थंकर भगवंतों ने यही मार्ग बताया था। आज भी माँ जिनवाणी यही मार्ग बता रही है, और आगे भी अनंत काल तक इसी मार्ग की व्याख्या होती रहेगी। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों की एकता ही मोक्ष का मार्ग है। इसी मार्ग से मुक्ति होती है। इन तीन की आराधना करने वाला ही एक दिन निर्वाण लक्ष्मी का स्वामी होता है। आचार्य भगवन् कुंदकुंद स्वामी मोक्ष प्राभृत में लिखते हैं-

रयणत्तयमाराहं जीवो आराहओ मुणेयव्वो।
आराहणाविहाणं तस्सफलं केवलं णाणं।।34।।

अर्थात्- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की आराधना करने वाले जीव को आराधक जानो और आराधना करने का फल केवल ज्ञान की प्राप्ति है।

जब तक यह रत्नत्रय का समीचीन मार्ग नहीं मिलता तब तक यह जीव चारों गतियों में ही परिभ्रमण करता रहता है। हमें महान पुण्ययोग से यह समीचीन मार्गदृष्टा सूत्र तो मिल गया पर हम इस समीचीन जिनमार्ग को कितना समझ पाये हैं।

प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ के साथ 4000 राजाओं ने दीक्षा ली थी। भगवान को तो धर्म मार्ग का ज्ञान था, पर उनको धर्म मार्ग का ज्ञान नहीं था। वह तो मात्र स्वामी भक्ति के कारण नग्न हुये थे। परिणाम यह हुआ कि आदिनाथ तो दीक्षा गृहणकर आत्मध्यान में लीन हो गये और शेष 4000 राजा जो मात्र भेष को धारण कर बैठे थे, वो परिषहों को सहन न कर सके और मार्ग से भ्रष्ट हो गये। मैं आपको उस इतिहास की ओर ले जा रहा हूँ जहाँ से धर्म का प्रवर्तन हुआ। भगवान ऋषभदेव को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। समोशरण सभा लगी और आत्महित की समीचीन देशना को सुनकर वो 4000 राजा भी बोध को प्राप्त हुये। एक रत्नत्रय का मार्ग ही सच्चा है ऐसा जानकर प्रभु के चरणों में आत्मकल्याण को प्राप्त हुये।

एक दिन चक्रवर्ती भरत ने समोशरण सभा में प्रभु आदिनाथ से एक प्रश्न किया-हमारे कुल में क्या आपके समान कोई और तीर्थंकर बनेगा? यही वो प्रश्न था जो कालान्तर में 363 मिथ्यामतों की स्थापना का कारण बना। भगवान की देशना में आया कि ये तेरा पुत्र मारीचि इस अवसर्पिणीकाल का अंतिम तीर्थंकर महावीर बनेगा। मारीचि ने जैसे ही अपने भावी तीर्थंकर पद की घोषणा सुनी, अहंकार की आग में जलने लगा, और तुरंत समोशरण सभा से बाहर चला गया। सभी जीवों की अपनी-अपनी होनहार होती है। कहाँ तो इतना बड़ा आत्महित का निमित्त सामने है वो चाहता तो अपने परिणाम और निर्मल कर सकता था। पर अहो! दुर्भाग्य, भावों में निर्मलता न आ सकी और अहंकार से ग्रसित हो गया। उस अज्ञानी ने सब कुछ जानते हुये भी 363 मिथ्यामतों का प्रवर्तन किया।

बंधुओ! मारीचि ने जो भी मत चलाये वो सभी जिनमत से बाह्य थे यही कारण था कि उन मतों को चलाने वाला और उन मतों पर चलने वाले दीर्घकाल तक संसार में कुयोनियों में ही भटकते रहे। जिनमत की शरण में आने के बाद कभी भी जीव को कुयोनियों में नहीं भटकना पड़ा। क्योंकि भगवान जिनेन्द्र की वाणी सिर्फ सुखमार्ग की अन्वेषक है। आचार्य मानतुंग स्वामी भक्तामर जी में लिखते हैं-

''स्वर्गापवर्ग-गम मार्ग विमार्गणेष्ट:''

अर्थात्- भगवान की वाणी मात्र स्वर्ग और मोक्ष के मार्ग का अन्वेषण करने वाली है। भगवान महावीर का जीव अनेक कुयोनियों में भटकता हुआ जब अंतिम तीर्थंकर के रूप में अवतरित हुआ, तो समोशरण सभा में सभी मिथ्यामतों का खण्डन कर दिया। और बताया कि रत्नत्रय ही सच्चा मोक्षमार्ग है, जो एक था, एक है और एक ही रहेगा। भगवान महावीर तो निर्वाण को प्राप्त हो गये, पर संसार में अनेक जीव अपनी होनहार के अनुसार आज भी भटक रहे हैं और अन्य भोले-भाले जीवों को भटका रहे हैं।

जिनकथित रत्नत्रय स्वरूप मोक्षमार्ग एक ही है, न दूसरा था और न कभी होगा। भगवान महावीर के निर्वाण प्राप्त कर लेने के पश्चात् अनेक श्रुतधर आचार्यों का उदय हुआ, इसी क्रम में एक महान आचार्य हुये श्री धरसेन स्वामी, जिन्हें श्रुत को सुरक्षित करने की चिंता हुई। और उन्होंने दो योग्य शिष्य आचार्य पुष्पदंत स्वामी एवं आचार्य भूतबली स्वामी के द्वारा श्रुत का लिपिकरण करवाया। अनंत उपकार हैं उन पूज्य आचार्य भगवंतों के हमारे ऊपर, आज हमें जितना भी धर्म मार्ग का ज्ञान है, वो उन पूज्य आचार्य भगवंतों की देन है। हम जितना भी जानते हैं, वो सब जिनागम को पढ़कर ही जानते हैं। अगर ये पतित पावनी जिनवाणी हमारे पास न होती तो न इस धरा पर श्रावक धर्म होता और न ही श्रमणधर्म। वर्तमान में जितने भी भव्य जीव श्रमण या श्रावक के व्रतों को धारण कर रहे हैं, वो सब माँ जिनवाणी की गोद में खेलकर ही कर रहे हैं।

इस काल में आगम से साधु उत्पन्न होते हैं, पर साधु से आगम-उत्पन्न नहीं होता। इसलिये हमारी हर चर्या और हमारी हर चर्चा आगम के अनुसार होनी चाहिये। इस काल में साधुओं का नेत्र आगम कहा गया है आचार्य भगवन् कुंदकुंद स्वामी प्रवचनसार जी में लिखते हैं-

''आगम चक्खू साहू''

अर्थात्- साधु का नेत्र आगम है। समय बदला, काल दोष से धर्म मार्ग की क्षीणता हुई और एक समय ऐसा आ गया कि इस भारत की अध्यात्म धरा पर निर्ग्रंथ मुनि बहुत अल्प संख्या में रह गये। और उस समय पंडित वर्ग पैदा हुआ। उन पंडितों द्वारा अपने तुच्छ ज्ञान के अहंकार में अपनी मान्यतानुसार कुछ नये रास्ते बना दिये गये। जो तेरहपंथ एवं बीसपंथ के नाम से जाने जाने लगे। मैं भी

पहले अपने जन्म क्षेत्र बुंदेलखण्ड के संस्कारों के कारण अपने को तेरहपंथी मानता था। लेकिन जब संघ में आया और मूल जिनागम का स्वाध्याय किया तो पता चला कि आगम में तो ये तेरह और बीस पंथ कहीं हैं ही नहीं। अरिहंत देव की वाणी में तो कहीं इनका नाम भी नहीं आया, तब अज्ञान हटा और सोच बदली कि साधु न तेरह पंथी होता है और न ही साधु बीस पंथी होता है। साधु तो जिनागम पंथी होता है। मैं तो अरिहंत कथित पंथ पर चलने वाला साधु हूँ। विद्वानों के पंथ पर चलने वाले नियम से दुर्गति के पात्र होंगे। क्योंकि अरिहंत मत में आत्महित का एक ही मार्ग है, 'द्वितीयो नास्ति'।

आज इन पंथों के कारण समाज में बिखराव हो रहा है। कोई अपने को तेरहपंथी मान रहा है, कोई अपने को बीस पंथी कह रहा है। अपने-अपने अहं की पुष्टि के लिये मंदिरों को रणांगण बना लिया। हमारा छोटा सा समुदाय आपस में प्रेम और मैत्री से नहीं रह पा रहा है। सभी के सिर पर पंथों का भूत सवार है। लेकिन ध्यान रखना जिसका उदय हुआ है उसका अस्त अवश्य होगा। पर जिनेन्द्र मत का न उदय है और न अस्त, क्योंकि वो तो अनादि अनिधन है।

आज हम जिन्हें अपना मार्गदर्शक कहते हैं चाहे वो साधु हों या विद्वान, जिन्हें भी ये पंथ सुहाते हैं वो जिनशासन से बाह्य हैं। वर्तमान में कतिपय साधु भी अपने आपको तेरहपंथी और बीसपंथी बता रहे हैं। अहो! अज्ञानता, अरे साधु तो वीतरागी होता है, अगर साधु तेरहपंथी या बीसपंथी होगा तो नियम से एक में राग, दूसरे में द्वेष होगा, और रागद्वेष होगा तो वह साधु कैसे रहेगा? श्रावक साधु को वीतरागी गुरु के रूप में पूजता है। जिन्हें राग-द्वेष से निकालना चाहिये था वो ही समाज को राग-द्वेष की कीचड़ में डाल रहे हैं।

वर्तमान में कतिपय विद्वान तेरह और बीस के झण्डे लेकर समाज को सिर्फ तोड़ने का, राग-द्वेष में डालने का, पंथों के पंक में फँसाने का काम कर रहे हैं।

अरे भाई! जब अनादि से अरिहंत कथित जिनागम पंथ है, तो इन तेरह और बीस की क्या जरूरत थी। अपने आप को तेरहपंथ या बीसपंथ का नहीं, अरिहंत कथित जिनागम पंथ का अनुयायी मानकर गौरवान्वित महसूस करो। अभी-अभी कुछ समय पूर्व से कुछ और नये पंथ सुनने में आ रहे हैं, कुछ लोग कहते हैं कि हम न तेरह पंथी हैं और न बीस पंथी। 13 और 20 को मिलाकर

33 हुये और उसके आधे हम साढ़े सोलह पंथी हैं। एक और पंथ आ गया अभी– 'शुद्ध तेरह पंथ' जब से ये शुद्ध तेरह पंथ आया तब से वो तेरह पंथ अशुद्ध हो गया।

ध्यान रखना! जो इन पंथों के व्यामोह में उलझे हैं और उलझाने का काम कर रहे हैं, वो मिथ्यादृष्टि हैं, क्योंकि उन्हें देव शास्त्र गुरु की श्रद्धा नहीं, पंथों की श्रद्धा है। सच्ची जिनवाणी और गुरुवाणी को सुनकर ये पंथों के वसन उतार देना। इन पंथ और पंथवादियों के चक्कर में हमारी जैन एकता लड़खड़ा रही है। पंथ के साथ–साथ जातियों के कारण भी हमारी समाज बिखरती जा रही है। अब इन अज्ञानता के जनक पंथों से मुक्त होकर गर्व से कहो कि हम जिनागमपंथी हैं, जिससे समाज में मैत्री भाव पुन: जीवित हो सके। क्योंकि मैत्री है तो ही पूजा, पूजा है। मैत्री है तो साधु है। और मैत्री है तो ही श्रावक है। हमारे आपसी मैत्री के स्रोत शुष्क हो चले हैं, तेरह पंथ वाले से पूछो कि क्या बीस पंथी से तुम्हारी मैत्री है? तेरह पंथी साधुओं की क्या कभी 20 पंथी साधुओं से मैत्री होगी? बीस पंथी साधुओं की क्या तेरह पंथी साधुओं से मैत्री होगी?

दिगम्बर करपात्री, पदयात्री, बाइस परिषहों को सहने वाले अपने आपको 13 पंथ या 20 पंथ के चोलों में पहिचान रहे हैं। जो मार्गदर्शक थे वो ही मार्ग से भटक गये। अब महावीर के समीचीन सूत्रों की व्याख्या कौन करेगा? साधुओं को चाहिये स्वयं जिनागम पंथ की शरण स्वीकार करें और समीचीन मार्ग से भटके हुये भव्य जीवों को पुन: जिनागम पंथ का उपदेश दें। ये उनकी जिम्मेदारी है।

मैं जहाँ भी जाता हूँ जिनागम की बात को डंके की चोट पर कहता हूँ। अरिहंत की गद्दी पर उनका लघुनंदन बनकर बैठता हूँ और सच्चे वीतरागी देव कथित जिनागम पंथ का जयघोष करता हूँ। मैं अगर तेरह पंथ या बीस पंथ की बात करूँगा तो रागी–द्वेषी हो जाऊँगा। हम निर्ग्रंथों की यह जिम्मेदारी है कि हम न तो राग–द्वेष करें और न समाज को रागद्वेष की कीचड़ में डालें। अपेक्षा करता हूँ, श्रमण और श्रावक जिनागम के आश्रय से जातिवाद और पंथवाद के नारे लगाना छोड़ें और सभी एक स्वर में बोलें– **"जिनागम पंथ जयवंत हो" जिनागम तीर्थ जयवंत हो।**